वीर संवत २४९२, माघ कृष्णपक्ष ५, गुरुवार

दि.१०-२-१९६६, गाथा-१७, प्रवचन नं.-२२

'छहढाला' की तीसरी ढाल है, उसकी आखिरी की १७वीं गाथा है। है न ?

मोक्षमहलकी परथम सीढी, या बिन ज्ञान चरित्रा;
सम्यक्ता न लहै, सो दर्शन, धारो भव्य पवित्रा।
'दौल' समझ सुन चेत सयाने, कालवृथा मत खोवै;
यह नरभव फिर मिलन कठिन है, जो सम्यक् नहिं होवै।।१७।।

उसका अर्थ, उसका अन्वयार्थ है न ? देखो ! क्या कहते हैं ? '**(यह सम्यग्दर्शन ही) (मोक्षमहल की) मोक्षरूपी महल की प्रथम सीढी है;...**' देखो ! पहली बात यह आई। सम्यग्दर्शन - पहली सीढ़ी तो यह है। आत्मा में अन्दर आनंद शुद्ध पडा है, वह पूर्ण आनंद की प्राप्ति होना उसका नाम मोक्ष है। पूर्ण अतीन्द्रिय आनंद आत्मा में अंदर पडा है, उसकी पर्याय में-अवस्था में पूर्ण आनंद प्राप्त होना, उसका नाम मोक्ष (है)। उस मोक्षमहल की प्रथम सीढी-सोपान सम्यग्दर्शन है। सम्यग्दर्शन के बिना मोक्ष की शुरूआत भी होती नहीं। क्योंकि मोक्षमार्ग में पहले तो सम्यग्दर्शन है।

'**मोक्षरूपी महल की प्रथम सीढ़ी है; (या बिन) इस सम्यग्दर्शन के बिना...**' सम्यग्दर्शन क्या (है) ? वह बात चली है, पहले आ गई है। परद्रव्य से भिन्न... वह आ गया है न ? परद्रव्य से भिन्न आत्मा की रुचि भली है। भगवान आत्मा शरीर, कर्म, पुण्य और पाप का विकारी भाव से भिन्न अपना स्वरूप शुद्ध आनंदकंद है, उसकी अंतर में दृष्टि होन। उसका नाम सम्यग्दर्शन पहले कहने में आया है। समझ में आया ?

परद्रव्य से भिन्न आत्मरुचि। आत्मा अर्थात् ज्ञानानन्द शुद्ध आनंदस्वरूप आत्मा है,

(उसकी) परद्रव्य से भिन्न और पुण्य-पाप का भाव जो आस्रव होता है उससे भी भिन्न अपना आत्मा आनंद और ज्ञायकस्वरूप है, उसका अंतर में भान होकर प्रतीत होना, उसका नाम प्रथम सम्यग्दर्शन है। इस सम्यग्दर्शन के बिना उसका ज्ञान हो या वर्तन आदि हो, वह सब मिथ्या है - यह कहते हैं, देखो !'छहढाला' यह तो सादी हिन्दी भाषा है। 'दौलतराम' कृत 'छहढाला' है। समझ में आया ?

'**इस सम्यग्दर्शन के बिना...**' अपना आत्मा शुद्ध चैतन्य ज्ञानानंदस्वरूप है, उसका अंतर में अनुभव हुए बिना, उसका सम्यग्दर्शन-अंतर में प्रतीत हुए बनिा कोई '**ज्ञान और चारित्र सच्चाई प्राप्त नहीं करते;...**' चाहे जितना पढ़ा हो परंतु सम्यग्दर्शन बिना वह ज्ञान, ज्ञान कहने में आता नहीं। समझ में आया ? अनंतकाल में यह क्या चीज है, वह उसने यथार्थपने सुनी नहीं। सर्वज्ञ परमेश्वर तीर्थंकरदेव त्रिलोकनाथ परमात्मा को जो एक समय में तीन काल तीन लोक देखने में आये ऐसे केवली परमात्मा ने आत्मा का स्वरूप ऐसा देखा कि, पुण्य-पाप का विकारी भाव होता है, उससे भिन्न देखा है।

मुमुक्षु :- किसको ?

उत्तर :- आत्मा को। पर के आत्मा को भी (ऐसा देखा है)। समझ में आया ? ऐसे आत्मा में... रात को सब प्रश्न चले थे उसका अर्थ एक ही है, '**भूदत्थमस्सिदो खलु**'। वह बात विशेष चलेगी, लेकिन अभी नहीं। समझ में आया ? वह जब चलेगी तब चलेगी। आत्मा ज्ञायकस्वरूप है, उसका ज्ञान होना, वही सब का सार है। क्रमबद्ध का, व्यवस्थित पर्याय होना, सर्वज्ञ ने देखा ऐसा होना, सब का एक ही लक्ष्य और एक ही स्वरूप है। समझ में आया ?

चैतन्य भगवान आत्मा चैतन्य ज्ञायक सूर्य है। ज्ञायक सूर्य आत्मा (है), उसमें शुभाशुभभाव उठते हैं, दया, दान, व्रत, भक्ति, काम, क्रोध का भाव (होता है), वह भी आस्रवतत्त्व है, वह आत्मा में नहीं है। समझ में आया ? वस्तु स्वभाव में नहीं है। ऐसा आत्मा का अंतर में स्वलक्ष्य करके त्रिकाली ज्ञायकभाव का राग से रहित होकर, स्वभाव में एकत्व होकर अनुभव में प्रतीत करनी वही अनंत-काल में नहीं प्राप्त की ऐसी सम्यग्दृष्टि है। इस

सम्यग्दर्शन के बिना चाहे जितना ज्ञान करे, चाहे जितना व्रत, तप करे.. तो कहते हैं कि, इसके बिना '**ज्ञान और चारित्र (सम्यक्ता) प्राप्त नहीं करते;...**' सच्चापना उसे मिलता नहीं, सच्चाई की छाप उसे मिलती नहीं।

मुमुक्षु :- क्यों नहीं मिलती ?

उत्तर :- झूठा है, प्रतीत में तत्त्व ही झूठा है जो वस्तु ज्ञायक चिदानंद है, उसका तो भान है नहीं, तो ज्ञान तो उसका करना है। पर का ज्ञान नहीं (करना) है। समझ में आया ? आत्मा में ज्ञान है, आनंद है, श्रद्धा है, शांति आदि अनंत गुण हैं। जब उसकी प्रतीति हुई तो ज्ञान, ज्ञान कहने में आता है और उसका भान हुआ तो ज्ञान के पश्चात् स्वरूप में स्थिरता (हो), अंतर आनंद में स्थिर हो, उसे चारित्र कहते हैं लेकिन सम्यग्दर्शन ही नहीं है, क्या चीज़ है, उसकी ही उसे खबर नहीं।

कहते हैं कि, '**इस सम्यग्दर्शन के बिना ज्ञान और चारित्र सच्चाई प्राप्त नहीं करते;...**' उसे सम्यक्ता लागू नहीं होती। सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र नहीं कहने में आता है। समझ में आया ? क्योंकि मोक्षमहल की प्रथम सीढी है। उसमें कहा है न ? उसमें लिखा है, देखो ! बड़ा महल है न ? महल है, देखो ! पहले सम्यग्दर्शन है, बाद में सम्यग्ज्ञान है, बाद में सम्यक्चारित्र है। देखो, है ? महल में चढने की सीढ़ी बनाई है। सीढ़ी में पहले सम्यग्दर्शन लिया है।

मुमुक्षु :- पुण्य क्यों नहीं लिया है ?

उत्तर :- पुण्य क्या है, पुण्य तो विकार है। समझ में आया ? पुण्य की प्रतीति, आत्मा की प्रतीति करने से पुण्य का भाव मेरे में नहीं है - ऐसी प्रतीति आती है। पुण्यतत्त्व भिन्न है, नव तत्त्व में पुण्यतत्त्व भिन्न है। आत्मतत्त्व भिन्न है, बंधतत्त्व भिन्न है, संवर, निर्जरातत्त्व भिन्न हैं। पहली सीढी यह ली है। थोड़े छोटे अक्षर हैं। महल लिया है न ? देखो न ! मोक्षमहल... मोक्षमहल की प्रथम (सीढ़ी)।

अंतर भगवान आत्मा...! क्रमबद्ध में भी वह आता है। क्रमबद्ध का ज्ञान करनेवाला कौन ? आत्मा। आत्मा का ज्ञान हुए बिना क्रमद्ध का ज्ञान उसे यथार्थ होता नहीं। दर्शन बिना

ज्ञान यथार्थ नहीं होता – ऐसा कहा। समझ में आया ? मूल चीज़ की खबर नहीं और अनादि से ऐसे ही चलता है। कहते हैं कि, सम्यक् आत्मा के अंतरबोध बिना दया, दान का विकल्प जो राग आता है, वह भी पुण्यबंध का कारण है। ऐसा सम्यग्दर्शन हो तो भान, ज्ञान होता है, नहीं तो ज्ञान सच्चा होता नहीं। समझ में आया ?

'**हे भव्य जीवो !**' देखो ! अब स्वयं संबोधन करते हैं। 'दौलतरामजी' स्वयं अपने को (संबोधन करते हैं)। (हिन्दी में) पोते नहीं बोलते ? 'दौलतरामजी' अपने को संबोधन करते हैं और दूसरों को भी संबोधन करते हैं। '**हे भव्य जीवो ! ऐसे पवित्र सम्यग्दर्शन को धारण करो...**' है ? यह तो सादी हिन्दी भाषा में है। हिन्दी भाषा (में) यह 'छहढाला' है। 'छहढाला' है, साधारण हिन्दी भाषा में है, लेकिन गागर में सागर भर दिया है। सारे जैनदर्शन का सार गागर में भर दिया है।

कहते हैं कि, '**पवित्र सम्यग्दर्शन...**' पवित्र क्यों लिया है ? निश्चय है इसलिए। व्यवहार सम्यग्दर्शन है, वह विकल्प है, राग है। निश्चयसम्यग्दर्शन है, वहां व्यवहार होता है। देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा, नव तत्त्व की भेदवाली श्रद्धा होती है लेकिन वह राग है। राग है, वह व्यवहार सम्यग्दर्शन है; पवित्र सम्यग्दर्शन नहीं। पवित्र सम्यग्दर्शन तो भगवान आत्मा, विकल्प जो शुभ-अशुभराग है, उससे हटकर स्वयं की अखंड आनंदमय ज्ञायकमूर्ति है, उसका अंतर में ज्ञान करके प्रतीत करनी, अनुभव में भास होकर प्रतीत करनी, उसका नाम पवित्र सम्यग्दर्शन कहने में आता है।

इसलिए लिया है, देखो ! '**हे भव्य जीवो ! ऐसे...**' ऐसे अर्थात् उपर कहा ऐसे सम्यग्दर्शन को – परद्रव्य से भिन्न अपने स्वरूप का ज्ञान। '**पवित्र सम्यग्दर्शन को धारण करो...**' समझ में आया ? '**धारण करो...**' अर्थात् तुमसे प्रकट होता है। कर्म से, कर्म निकले तो धारण होता है और उसके पुरुषार्थ बिना धारण होता है – ऐसा नहीं। समझ में आया ?

पर्याय व्यवस्थित है, सर्वज्ञ ने देखी है तो पुरुषार्थ बिना व्यवस्थित का ज्ञान किसने किया ? यह आत्मा शुद्ध अखंड ज्ञान है – ऐसा अंतरबोध हुए बिना प्रतीत कहाँ से आयेगी ?

और पुरुषार्थ बिना स्वभाव का निर्णय कहाँ से होगा ? पुरुषार्थ से होता है, कर्म से नहीं। समझ में आया ?

कहते हैं कि, '**हे भव्य जीवो ! ऐसे पवित्र सम्यग्दर्शन को धारण करो...**' अपने आप ही प्रकट होगा, जब काललब्धि आयेगी, भगवान ने देखा होगा तब होगा - ऐसा यहाँ नहीं कहा है।

मुमुक्षु :- दूसरी जगह पर कहा है।

उत्तर :- दूसरी जगह पर दूसरी बात है। वहाँ कहा है कि, ऐसा आत्मा जब तुम्हारी दृष्टि में आयेगा तो भगवान ने ऐसा देखा है। तुम्हारा पुरुषार्थ संयोग से, विकार से हटकर अपने स्वभाव के पुरुषार्थ से स्वभाव का भान हुआ तो उसी समय में सम्यग्दर्शन पर्याय होनेवाली थी, वही भाव था, वही कर्म का अभाव समय में है - ऐसा भगवानने देखा है। परंतु कर्ता कौन है ? भगवान करते हैं या तुम करते हो ? तुम्हारे श्रद्धागुण की पर्याय तुम करते हो या भगवान करते हैं ? भगवान तो सर्वज्ञ हैं, वे तो पर हैं। भगवान (अन्य के) आत्मा के कर्ता नहीं। जैसे जगत का कोई ईश्वरकर्ता नहीं है, ऐसे आत्मा के श्रद्धागुण की पर्याय के कर्ता भगवान नहीं है। भगवान तो जाननेवाले हैं। इस कारण से कहते हैं, भाई ! कर्ता होकर तुम धारण करो, ऐसा कहते हैं। आहा..हा... ! बहुत थोडे शब्दो में बहुत भर दिया है। 'दौलतरामजी' पंडित। पहले के पंडित ने बहुत अच्छी बात (कही है), गागर में सागर भर दिया है।

भगवान आत्मा की सम्यक् प्रतीति, पवित्रता धारण करो। देखो ! यहाँ से पवित्रता शुरू होती है। राग नहीं, पुण्य नहीं, विकल्प नहीं, शुभभाव नहीं। समझ मे आया ? आहा..हा... ! अब कहते हैं, ऐसा पवित्र सम्यग्दर्शन तुमने अनंतकाल में प्राप्त नहीं किया। उसके बिना - आत्मज्ञान बिन अंतर बार सब बाते की। समझ में आया ? 'मुनिव्रत धार अनंत बार ग्रैवेयक उपजायो, पर आतमज्ञान बिन...' वह भी 'दौलतरामजी' (कहते हैं)। आगे आयेगा न ? आगे। इसमें आगे आयेगा। कहाँ है ? कौन-सी (गाथा) है ? कौन-सी (गाथा की) पंक्ति है ? ज्ञान में होगी। इस (चौथी) ढाल में होगी। चौथी ? देखो ! वही (गाथा) आयी। देखो ! पाँचवी (गाथा) है। देखो ! चौथी ढाल, पाँचवा श्लोक। इसी में है, देखो ! तीसरी (ढाल का)

अंतिम श्लोक चल रहा है, इसके बाद की चौथी (ढाल)। तीसरी ढाल का अंतिम श्लोक चल रहा है और सम्यग्ज्ञान चलेगा, उसकी यह पंक्ति हैं। पाँचवी है, देखो ! पाँचवी।

'**कोटि जन्म तप तपैं, ज्ञान बिन कर्म झरैं जे;...**' ९९ पन्ना है। '**कोटि जन्म तप तपैं, ज्ञान बिन कर्म झरैं जे;...**' करोड़ जन्म तप करो, करोड़ वर्ष के करो और करोड़ भव करो लेकिन आत्मा ज्ञान चिदानंदमूर्ति के आनंद का स्वाद आये बिना, कर्म झरै (नहीं)। '**ज्ञानीके छिनमें त्रिगुप्ति तैं सहज टरै ते।**' सम्यग्ज्ञानी-आत्मज्ञानी अंतर आत्मा में विकल्प से रहित होकर अंतर ध्यान में अंतर्मुहूर्त रहें तो भी जो करोड़ भव में करोड़ वर्ष तप करें उससे जो कर्म खिरते हैं, इससे अनंतगुने कर्म सम्यग्दृष्टि को झरते हैं।

'**मुनिव्रत धार अनन्तबार ग्रीवक उपजायो; पै निज आतमज्ञान बिना,...**' '**पै निज आतमज्ञान**' पै निज आतम, हाँ ! भगवान का ज्ञान भगवान के पास है। निज आत्मज्ञान बिना '**सुख लेश न पायौ।**' यह तो ज्ञान का अधिकार है। यह चल रहा है, वह दर्शन का अधिकार है। दर्शन के बाद ज्ञान अधिकार है। यह चल रहा है, वह दर्शन का अधिकार है। दर्शन केबाद ज्ञान अधिकार में यही ज्ञान लेंगे। ज्ञान यानी आत्मज्ञान। दर्शन जैसे आत्मा का दर्शन, वैसे ज्ञान भी आत्मा का ज्ञान; पर के ज्ञान की बात यहाँ नहीं है। आत्मा का ज्ञान हुए बिना अनंत बार मुनिव्रत धारण किया। उपर कहा न ? '**ग्रीवक उपजायो**' उत्तम ग्रैवेयक हैं, वहाँ जन्म धारण किया लेकिन आतमज्ञान बिना सुख लेश (न पायो)। एक सम्यग्दर्शन, ज्ञान बिना आनन्द के एक अंश का अनुभव उसे हुआ नहीं, उसके बिना उसे धर्म हुआ नहीं। समझ में आया ? वह बाद में कहेंगे। यह तो तीसरी (ढाल चल रही है)।

'**हे समझदार दौलतराम !**' स्वयं अपने को कहते हैं। 'दौलतरामजी' अपने को कहते हैं, देखो ! हे '**(सयाने)**' सयाने... सयाने। '**हे समझदार दौलतराम ! (सुन-सुन)...**' स्वयं को कहते हैं, सुन ! और दूसरे को भी कहते हैं, सुन ! है 'दौलतराम' ! यह दौलत, आत्मा का आनन्दराम, अंतर में अंतर संपदा (है)। अंतर अनंत ज्ञान, अनंत दर्शन, अनंत आनंद शांति आत्मा में पड़ी है। ऐसी दौलत का राम-आत्मा, आत्माराम दौलतराम है। हे दौलतराम ! समझदार 'दौलतराम'। ऐसी भाषा ली है। सयाने हो, भैया ! तुम तो सयाने आत्मा हो। विकार

और पर से प्रभु ! विवेक करनेवाले समझदार हो, तुम मूढ नहीं हो। तेरी चीज़ ऐसी है – ऐसा कहते हैं। आहा..हा... ! समझ में आया ? अरे.. ! प्रभु ! तुम तो सयाने हो न ! समझदार हो न ! तेरे आत्मा में आनंद है और पुण्य-पाप का विकार दु:खरूप है, उससे भिन्न ऐसे तुम समझदार हो। कहते हैं कि 'दौलतराम' सुन ! हम तुमको कहते हैं, आत्मा को आत्मा कहते हैं – ऐसा यहाँ कहते हैं। आहा..हा... ! समझ में आया ?

भगवान आत्मा... आत्मा को संबोधन करता है। हे आत्मा ! तेरा स्वरूप देह, वाणी, मन, कर्म और विकार से भिन्न है, ऐसा तुम सम्यग्दर्शन धारण करो, ऐसे तुम सयाने हो, तुम विवेकी हो, तुम समझदार हो – ऐसा आत्मा को कहते हैं। सुन, समझ। अंतर में सुन और समझ और चेत। तीन शब्द लिये हैं। सुन, समझ (और) चेत, तीन शब्द लिये हैं। यह तो हिन्दी भाषा सादी है न ? क्यों ? भाई ! यह मास्टरजी जैसी सूक्ष्म भाषा नहीं है।

कहते हैं कि, हे प्रभु ! आत्मा सुन ! मात्र सुन ऐसा नहीं,समज और सावधान होओ। समझ और सावधान होओ, देखा ! वहाँ मोह का अभाव दिखाते हैं। आहा... ! तेरी चीज तेरे पास है। हिरन की नाभि में कस्तूरी है, ढूंढता है बाहर। ऐसे भगवान आत्मा में अंतर में आनंद, शांति आदि जो सर्वज्ञ परमेश्वर ने प्रकट किया, वह सब आत्मा में हैं। समझ में आया ? कहते हैं कि हे सयाने ! सुन, समझ, सावधान हो। '**समय को व्यर्थ न गँवा;...**' आहा..हा... ! काल वृथा मत गँवा, भगवान ! अनंत काल में मुश्किल से समय मिला है, अनंत काल के परिभ्रमण में भटकते-भटकते मुश्किल से मनुष्य का देह अल्पकाल के लिये मिला है। ऐसे काल में प्रभु ! तुम व्यर्थ काल मत गँवा – ऐसा आत्मा को कहते हैं। आहा..हा... ! समझ में आया ?

सबको कहते हैं, अरे... ! आत्मा ! अनादि काल से प्रभु ! तुम भटक रहे हो, भगवान ! चार गति में चौरासी (लाख योनि के) अवतार में तुझे मुश्किल से मनुष्यदेह मिला। उस मनुष्यदेह में सर्वज्ञ परमेश्वर तीर्थंकरदेव त्रिलोकनाथ जो आत्मा कहते हैं, उसे सुन। आहा.. ! आत्मा को सुन – ऐसा कहा। भगवान आत्मा ज्ञान का सूर्य आनंदमूर्ति है, उसे तू समझ। उसमें विकार है नहीं, शरीर, कर्म उसमें है नहीं। भगवान ! तेरा समझने का काल है। आहा..हा... ! कितना संबोधन किया है ! गृहस्थाश्रम में रहते थे। गृहस्थाश्रम में थे या नहीं ? स्त्री-पुत्र सब

थे, हो, वे उनके पास रहे, वे कहाँ घुस गये हैं ? आत्मा में कहाँ घुस गये हैं ? वे उनमें हैं, देह देह में है, स्त्री स्त्री में है, पैसा-पैसा धूल में है, पैसा धूल और धूल में है, आत्मा में कहाँ घुस गया है ? समझ में आया ? गृहस्थाश्रम में कहते हैं, भाई ! गृहस्थाश्रमी पैसेवाले को ऐसा कहते हैं ? धूल कहाँ उसकी है ? धूल तो जड़ की है। वह तो मिट्टी है, अजीवतत्त्व है। अजीव से तेरी चीज तो भिन्न है। अजीव की ममता करता है उससे भी तेरी चीज भिन्न है। वह बात तो यहाँ कहते हैं, तू एकबार बात सुन ! समझ में आया ?

भगवान आत्मा, अजीवतत्त्व से तो तेरी चीज भिन्न है और अजीव पर तू ममता करता है कि, मेरा है, ममता करता है, उस ममता से भी तेरी चीज भिन्न है। ममता तो विकार है, आस्रवतत्त्व है। आस्रवतत्त्व जीवतत्त्व नहीं होता। समझ में आया ? क्या करे ? ऐसे ही काल गँवाता है। मूढपने अनंत काल गँवाया।

कहते हैं कि, हे सयाने ! समय व्यर्थ न गँवा। आहा..हा... ! तेरे एक-एक समय की कीमत है, प्रभु ! अनंत काल में महा कौस्तुभमणि मिलना भी सुलभ है लेकिन ऐसा मनुष्यदेह, उसमें ऐसा आत्मा का भान करने का अवसर महा महा दुर्लभ है। समझ में आया ? नववींग्रैवेयक अनंत बार गया तो भी उसने आत्मा का ज्ञान किया नहीं। ज्ञान करने का तेरा अवसर है - ऐसा कहते हैं। देखो ! आ..हा.. !

'**व्यर्थ न गँवा;...**' ऐसा नहीं कहते हैं कि, अभी हमारी काललब्धि परिपक्व नहीं हुई तो क्या करें ? ए..ई.. ! जब काललब्धि होगी, तब पुरुषार्थ होगा... भगवान ने देखा होगा तब होगा - ऐसा नहीं कहते हैं। समझ में आया ? भगवानने देखा ऐसा होगा - ऐसा जिसने माना और काललब्धि है, उसका जिसे ज्ञान होता है उसे आत्मा में पुरुषार्थ करके (निर्णय) होता है। काल व्यर्थ न गँवा, प्रभु ! काल व्यर्थ न गँवा। आहा..हा... ! भाई ! आत्मा को समझने का, प्रतीत करने का, श्रद्धा करने का तेरा काल है। देखो ! वही कहते हैं। तुझे क्षयोपशम है (परंतु) क्षयोपशम का ज्ञान तुम पर की ओर लगाते हो। तेरा क्षयोपशम तो है (लेकिन) पर में लगाते हो, वह तेरा काल व्यर्थ हो रहा है। लगा... आत्मा में। आहा..हा... ! समझ में आया ?

'**समय को व्यर्थ न गँवा;...**' गजब बात कही है। काल को निरर्थक मत छोड़, सार्थक

कर दे। भगवान शुद्ध चैतन्यमूर्ति तुम हो न ! सावधान होकर अंतर में प्रतीत कर, सावधान होकर श्रद्धा कर; काल को वृथा मत गँवा। '**(क्योंकि)...**' क्योंकि कहते हैं न ? '**यदि सम्यग्दर्शन नहीं हुआ...**' देखो ! आत्मदर्शन-देह, वाणी, मन, कर्म, धूल से भिन्न, पुण्य-पाप का विकल्प जो दया, दान, काम, क्रोध शुभाशुभभाव आस्रव से भिन्न, ऐसे आत्मा का अंतर में सम्यग्दर्शन नहीं हुआ तो तेरा परिभ्रमण नहीं मिटेगा। आहा..! भाई !

क्या परपदार्थ तुझे काम आते हैं ? और परपदार्थ को तुम काम आते हो ? क्या पुण्य-पाप के विकार तेरे काम आते हैं ? वह तो विकार है। भगवान आत्मा अनंत-अनंत शांतरस, आनंदकंद प्रभु आत्मा हे, उसे काम में ले - ऐसा कहते हैं। आहा..हा...! समझ में आता है ? समझ में आया ? आ..हा...! यह आपके लिये हिन्दी चलती है, नहीं तो गुजराती में चलता था। हमें बहुत हिन्दी नहीं आती है, साधारण-साधारण चलती है। समझ में आया ?

भगवान ! यहाँ तो आत्मा को भगवान कहकर ही बुलाते हैं। 'समयसार' में 'आस्रव अधिकार' में 'कुन्दकुन्दाचार्य' महाराज दिगम्बर संत दो हजार वर्ष पहले जंगल में रहनेवाले (थे), उनके बाद 'अमृतचंद्राचार्य' हुए। आज से नौसो वर्ष पहले (हुए)। 'कुन्दकुन्दाचार्यदेव' के बात ११०० वर्ष बाद हुए। जंगल में रहनेवाले आत्मध्यान में, आनंद में मस्त 'अमृतचंद्राचार्यदेव' दिगम्बर मुनि उन्हों ने ताडपत्र पर टीका लिखी। वे कहते हैं कि, अरे..! भगवान आत्मा ! एसा कहते हैं। 'आस्र अधिकार' की ७२ गाथा है न ? हे भगवान आत्मा ! आहा..हा...! जैसे माता बालक को झुले में झुलाती हो, तब माता कहती है - सयाना है, मेरा बेटा होशियार है। वैसे आचार्यदेव आत्मा को कहते हैं। दिगंबर मुनि वनवास में रहनेवाले ९०० वर्ष पहले टीका बनाई। कहते हैं कि, अरे...! भगवान आत्मा ! पुण्य-पाप का विकार तो प्रभु आस्रव है न ! वह तो दु:खदायक है न ! वह तो अशुचि है न ! वह तो जड़ है न ! तुम तो चैतन्य हो न ! तुम तो आनंद हो न ! तुम तो विकार से रहित चेतन हो न ! आहा..हा...! ऐसा संबोधन करके जगाते हैं। उसकी माता गाना गाकर झूले में सुलाती है। यहाँ भगवान आत्मा को आचार्य, संतो, ज्ञानी जगाते हैं, जाग..! तुम कौन हो ? समझ में आया ?

अरे...! सम्यग्दर्शन, ऐसा भान... 'श्रेणिक राजा'। इसमें आ गया था, कल नहीं लिया

था। पहले सातवी नरक का आयुष्य बाँधा था। ८२ वे पन्ने पर नीचे है। '**जिस प्रकार श्रेणिक राजा सातवें नरक की आयु का बंध करके फिर समकित को प्राप्त हुए थे,...**' 'श्रेणिक' राजा, हजारो रानियां थी, राजपाट बडा था। महासुंदर शरीर था, 'चेलना' जैसी धर्मी रानी थी। ऐसे जीव को सम्यग्दर्शन, आत्मा का भान हुआ। भगवान तीर्थंकरदेव त्रिलोकनाथ 'महावीर' भगवान के समवसरण में क्षायिक समकित हुआ। कहते हैं कि पहले सातवें नरक का आयुष्य बँध गया था। मिथ्यादृष्टि में मुनि की अशातना की थी। बाद में आत्मा का भान (हुआ कि), आत्मा अखंड आनंद ज्ञाता-दृष्ट (स्वरूप है)। वह राग, विकल्प उठता है, उसका भी करनेवाला नहीं। आत्मा में उसका संबंध है ही नहीं। ऐसा क्षायिक समकित हुआ तो भी '**उन्हें नरक में तो जाना ही पडा था किन्तु आयु सातवें नरक से घटकर पहले नरक की ही रही।**' पहली नरक की रह गई। सम्यग्दर्शन प्राप्त किया तो पहले जो सात नरक का आयुष्य बँधा था उसे तोड़कर पहली नरक में जाना पडा। चौरासी हजार वर्ष की स्थिति में अभी पहली नरक में है।

नीचे सात नरक है न ? सात नरक है। उसमें पहली नरक में (गये हैं)। भगवान के पास उन्होंने क्षायिक समकित पाया था। 'श्रेणिक' राजा। त्याग नहीं किया था, व्रतादि नहीं थे, आत्मभान हुआ। सम्यग्दर्शन जो अनंत काल में प्राप्त नहीं किया, ऐसा प्राप्त किया। गृहस्थाश्रम में राजपाट में रहने पर भी, आत्मा का अंतर अनुभव होने से सातवी नरक का आयुष्य जो पहले मिथ्यादृष्टि में बँधा था, (उसे) तोड़कर पहली नरक में चौरासी हजार (वर्ष का रह गया)। गति नहीं फिरती, स्थिति (फिर गई)। समझ में आया ? लड्डु बनाया हो, चूरमा का लड्डु। जो बन गया उसमें से गुड़, आटा निकालकर दूसरा पकवान नहीं होता, वह तो उसे खाना ही पडेगा। थोडे समय ऐसा ही रहेगा तो घी, गुड़ सूक जायेगा, लेकिन उसमें से घी निकालकर पूडी बनाये - ऐसा नहीं बनता। उसी प्रकार एकबार गति का आयुष्य बँध गया तो गति नहीं फिरती, लेकिन आत्मा के भान द्वारा स्थिति लंबी थी उसे तोड़ दी। पहली नरक में चौरासी हजार वर्ष की स्थिति में है, परंतु सम्यग्दर्शन है।

सज्झाय आती है। किसमें आता है ? 'बाहिर नारकी कृत दु:ख भोगत, अंतर सुख की गटागटी'। सर 'हुकमीचंद' यहाँ पहली बार आये थे, तब यह बोले थे। शेठ आये थे न ? वे

पहले बोले थे। क्या ?'बाहिर नारकी कृत दु:ख भोगत, अंतर सुख की गटागटी' सम्यग्दर्शन है तो नरक में नारकी होने पर भी (सुख भोगते हैं)। सम्यग्दर्शन क्या चीज है, उसकी दुनिया को खबर नहीं।'श्रेणिक' राजा नरक में चौरासी हजार वर्ष की स्थिति में हैं, २५०० हजार वर्ष गये, २५०० वर्ष गये और साढे इक्यासी हजार वर्ष बाकी हैं। बाद में पहले तीर्थंकर होंगे। आगामी काल में जगतगुरु त्रिलोकनाथ जैसे 'महावीर' भगवान हुए, वैसे होंगे। एक सम्यग्दर्शन का प्रताप !! समझ में आया ? सम्यग्दर्शन क्या है, उसकी जगत को खबर नहीं। इसके बिना ज्ञान और व्रत बिना अंक के शून्य हैं। समझ में आया ? वह तो पहले कहा। सातवी नरक की (स्थिति तोड़कर) पहली नरक में चौरासी हजार वर्ष की स्थिति में गये। वहाँ भी आनंद है। बाहर में दु:ख है, अंदर में राग से भिन्न आत्मा का भान है न, नरक में भी ! नरक में यानी नारकी, आनंद आनंद का वेदन करते हैं। ओ..हो...हो... ! नरक में नारकीपने होने पर भी सम्यग्दृष्टि को आनंदरस का वेदन है।

कहते हैं कि, **'यदि सम्यग्दर्शन नहीं हुआ तो यह मनुष्य पर्याय पुन: मिलना दुर्लभ है।'** आहा..हा... ! भगवान आत्मा को कहते हैं कि, है आत्मा ! दुनिया की बात छोड़ दे। दुनिया दुनिया में रही। तेरे आत्मा का भान कर ले, नहीं तो ऐसा मनुष्यदेह पाना दुर्लभ... दुर्लभ... दुर्लभ है। समझ में आया ? शास्त्र में तो बहुत दृष्टांत दिये हैं। चिंतामणि रत्न। हाथ में हो और वह समुद्र में चला जाये। जाने के बाद वह पाना मुश्किल है। रत्न समुद्र के तलवे में चला गया, कहाँ से मिलेगा ? ऐसा मनुष्यदेह फिर मिलना बहुत कठिन है। यदि आत्मदर्शन नहीं किया तो तेरा सब व्यर्थ है। पाँच-पचास लाख, करोड-दो करोड पैदा किये हो या त्यागी होकर व्रत और नियम धारण किये हो परंतु सम्यग्दर्शन बिना तेरा मनुष्यदेह व्यर्थ है। ऐसा कहते हैं। देखो ! देखो !'दौलतरामजी' तीसरी ढाल की अंतिम गाथा (में ऐसा कहते हैं)। **'यह (नर भव) मनुष्य पर्याय पुन: मिलना दुर्लभ है।'** थोडा भावार्थ लिया है। भावार्थ लिया है न ?

'भावार्थ :- यह सम्यग्दर्शन ही...' (मूल पुस्तक में) नीचे (फूटनोट में) लिखा है।

सम्यग्दृष्टि जीवको, निश्चय कुगति न होय।
पूर्वबन्ध तें होय तो सम्यक् दोष न कोय।।

आत्मा सम्यग्दर्शन हुआ। कदाचित् उसको कुगति तो नहीं होती, परंतु पूर्व का बंध हो गया हो तो सम्यक् दोष नहीं होता, उसे सम्यग्दर्शन में दोष लगता नहीं। समझ में आया ? आहा..हा... ! 'परमात्मप्रकाश' में कहा है, सम्यग्दर्शन सहित नरक में जाना अच्छा है, लेकिन मिथ्यादृष्टि सहित स्वर्ग में जाना बुरा है। स्वर्ग में देव, देवियां लाखो, करोडो, अरबों वर्ष आत्मा के सम्यग्दर्शन बिना मिथ्याश्रद्धा करके चला भी गया (तो भी) तेरा स्वर्ग दु:खरूप है। सम्यग्दर्शन आत्मा का भान करके नरक में गया तो भी वहाँ सुखरूप है। वहाँ से निकलकर 'श्रेणिक'राजा तीर्थंकर होंगे। समझ में आया ? 'श्रेणिक'राजा उसी भव में केवलज्ञान प्राप्त करके मोक्ष में जायेंगे। नरक से सीधे निकलकर, सीधे निकलकर तीर्थंकर होंगे। तीन ज्ञान लेकर तो पहली नरक से आयेंगे और क्षायिक समकित तो साथ है। भान... भान... भान... (है)। राग नहीं, शरीर नहीं, दौलत नहीं, यह जन्म है, वह मेरा नहीं। माता के पेट में आया, वह जन्म मेरा नहीं, माता मेरी नहीं है; मैं तो आनंदकंद शुद्ध चैतन्य डूँ। माता के पेट में आयेंगे तो भी ऐसा भान रहेगा। आहा..हा... ! समझ में आया ?

'सम्यग्दर्शन ही मोक्षरूपी महल में पहुँचने की प्रथम सीढ़ी है। इसके बिना ज्ञान और चारित्र सम्यक्पने को प्राप्त नहीं होते अर्थात् जब तक सम्यग्दर्शन न हो, तब तक ज्ञान वह मिथ्याज्ञान...' देखो ! समझ में आया ? सर्वज्ञ भगवान ने कहा ऐसा आत्मा। परमेश्वर त्रिलोकनाथ तीर्थंकरदेव भगवान ने ऐसे अनंत आत्मा देखे हैं। त्रिलोकनाथ परमेश्वर कहते हैं, वर्तमान में भी महाविदेहक्षेत्र में 'सीमंधर' परमेश्वर मनुष्यदेह में बिराजमान हैं। एक करोड पूर्व का आयुष्य है, पांचसो धनुष का ऊँचा देह है। दो हजार हाथ ऊँचा। महाविदेहक्षत्र में भगवान बिराजते हैं। इस जमीन पर महाविदेहक्षेत्र में मनुष्यदेह में बिराजते हैं। महाविदेहक्षेत्र दूर है। महाविदेहक्षेत्र दूर है, बहुत दूर है। यह भरतक्षेत्र है न ? उससे बहुत दूर है। जमीन पर है, बहुत दूर है, हजारो योजन दूर है। वहाँ भगवान वर्तमान में बिराजते हैं। 'सीमंधर' तीर्थंकरदेव। णमो अरिहंताणं पद में बिराजते हैं। चौबीस तीर्थंकर णमो सिद्धाणं में बिराजते हैं। चौबीस तीर्थंकर तो सिद्धपद में हैं, सिद्ध में बिराजते हैं, उनको शरीर नहीं है। यहाँ थे तब शरीर था। अब सिद्ध हो गये। भगवान बिराजते हैं तो शरीर है, वाणी भी है, उपदेश होता है, सो-सो इन्द्र की उपस्थिति है, समवसरण में उपस्थिति है। भगवान की दिव्यध्वनि ॐकार निकलता है और

वर्तमान मनुष्यक्षेत्र में इन्द्रों आदि को सुनाते हैं। समझ में आया ? वे भगवान कहते हैं कि, भाई ! भगवान ने कहा वही सब ज्ञानी कहते हैं।

'इसके बिना ज्ञान और चारित्र सम्यक्पने को प्राप्त नहीं होते अर्थात् जब तक सम्यग्दर्शन न हो, तब तक ज्ञान वह मिथ्याज्ञान...' है। आहा..हा... ! शास्त्र का पढ़ना, ग्यारह अंग का पढ़ना, नव पूर्व का पढ़ना, सब आत्मदर्शन शुद्ध श्रद्धा-ज्ञान, आनंद की अंतर प्रतीत, भान बिना वह सब ज्ञान मिथ्याज्ञान है। है न ? **'और चारित्र वह मिथ्याचारित्र कहलाता है।'** आत्मा ज्ञाता-दृष्टा का अनुभव अंतर दृष्टि बिना बाहर का क्रियाकांड मिथ्याचारित्र कहलाता है। वह चारित्र सम्यक् है नहीं। **'सम्यग्ज्ञान तथा सम्यक्चारित्र नहीं कहलाते।'** अस्ति-नास्ति की है।

आत्मदर्शन अनुभव बिना, आत्मज्ञान ज्ञाता-दृष्टा के अनुभव बिना जो कोई क्रियाकांड होता है, उसको भगवान चारित्र कहते नहीं। **'इसलिए प्रत्येक आत्मार्थी को...'** प्रत्येक आत्मार्थी को, प्रत्येक जीव को-आत्मार्थी को **'ऐसा पवित्र सम्यग्दर्शन अवश्य धारण करना चाहिए। पंडित दौलतरामजी अपने आत्मा को संबोधन करके कहते हैं कि-हे विवेकी आत्मा !'** देखो ! सयाना कहा है न ? सयाना। **'हे विवेकी आत्मा ! तू ऐसे पवित्र सम्यग्दर्शन के स्वरूप को स्वयं सुनकर...'** स्वयं सुनकर। कोई सुनाये ऐसा नहीं, तू स्वयं सुनकर - ऐसा कहते हैं।

मुमुक्षु :- कोई सुनानेवाले हो तो सुने न ?

उत्तर :- कहते हैं कि, धर्मात्मा ज्ञानी के पास आत्मा के सम्यग्दर्शन का स्वरूप स्वयं सुनकर, तू सुनकर। दूसरे ने कहा और दूसरे ने (सुन) लिया, ऐसा नहीं। **'स्वयं सुनकर अन्य अनुभव ज्ञानियों से प्राप्त करने में...'** प्राप्त करने में **'सावधान हो;...'** दो बात कही है। दो शब्द हैं न ? सुन, समझ और सावधान हो (ऐसे) तीन शब्द हैं न ? बहुत थोडे शब्द में बहुत भर दिया है। समझ में आया ?

'अपने अमूल्य मनुष्यजीवन को व्यर्थ न गँवा।' मनुष्यदेह कींमत से नहीं मिलता। एक अरब रूपयें देने से ऐसी आँख मिलती है ? नाखुन का एक टूकडा भी करोड़ रूपयें दे तो

(भी) नया नहीं मिलता। अनंतकाल में ऐसा देह मिला, यदि आत्मा का भान नहीं किया तो व्यर्थ है – ऐसा कहते हैं। ओ..हो..हो... !

मुमुक्षु :– रूपये नहीं मिले तो व्यर्थ है।

उत्तर :– रूपये तो बहुत मिला है, धूल में क्या है ? भाई ! उनके पास रूपये हैं। पुत्र के पास दो करोड रुपये हैं। काम नहीं आते ? क्या है ? समझ में आया ? उसके पुत्र के पास दो करोड हैं।

मुमुक्षु :– उसे क्या काम आते हैं ?

उत्तर :– बाप तो कहलाता है या नहीं ? पिता तो कहने में आता है या नहीं ? भले ही पुत्र पैसा नहीं देता हो।

मुमुक्षु :– तीन–चार साल से छोड दिया है।

उत्तर :– छोड दिया तो क्या करे ? पहले से छोड दिया है, लिखकर दिया है, तुम अलग और हम अलग। वैसे भी भिन्न ही है, एक कौन है ? कल्पना की कल्पना है। धूल में है क्या ? पाँच करोड़ हो या दस करोड़ हो, मिट्टी–धूल है। आत्मा को कहाँ काम आती है ? आत्मा के सुख में वह चीज़ कहाँ मदद करती है ? वह तो मिट्टी है, धूल है, अजीवतत्त्व है। अजीव में सुख है ? अजीव धूल में सुख है ? ऐ..ई... !

मुमुक्षु :– लड़के को बडा किया।

उत्तर :– लड़के को बडा किया ? धूल में भी बड़ा नहीं किया। वह तो उसके आयुष्य के कारण बड़ा हुआ है। समझ में आया ?

कहते हैं, अरे... ! **'अमूल्य मनुष्यजीवन को व्यर्थ न गँवा। इस जन्म में ही यदि समकित प्राप्त नहीं किया तो फिर मनुष्यपर्याय आदि अच्छे योग पुनः पुनः प्राप्त नहीं होते।'** मनुष्यदेह वीतराग सर्वज्ञ परमेश्वर त्रिलोकनाथ की यथार्थ वाणी... समझ में आया ? ऐसा प्राप्त होना अनंत काल में महामुश्किल है। तीसरी ढाल (समाप्त) हुई। सारांश में है वह सब आ गया है। चौथी ढाल लो, चौथी।

चौथी ढाल

सम्यग्ज्ञान का लक्षण और उसका समय

(दोहा)

सम्यक् श्रद्धा धारि पुनि, सेवहु सम्यग्ज्ञान,
स्व-पर अर्थ बहु धर्मजुत, जो प्रगटावन भान।।१।।

अन्वयार्थ :- (सम्यक् श्रद्धा) सम्यग्दर्शन (धारि) धारण करके (पुनि) फिर (सम्यग्ज्ञान) सम्यग्ज्ञान का (सेवहु) सेवन करो; (जो सम्यग्ज्ञान) (बहु धर्मजुत) अनेक धर्मात्मक (स्व-पर अर्थ) अपना और दूसरे पदार्थों का (प्रगटावन) ज्ञान कराने में (भान) सूर्य के समान है।

भावार्थ :- सम्यग्दर्शन सहित सम्यग्ज्ञान को दृढ़ करना चाहिए। जिस प्रकार सूर्य समस्त पदार्थों को तथा स्वयं अपने को यथावत् दर्शाता है, उसी प्रकार जो अनेक धर्मयुक्त स्वयं अपने को (आत्मा को) तथा पर पदार्थों को* ज्यों का त्यों बतलाता है उसे सम्यग्ज्ञान कहते हैं।

'**सम्यग्ज्ञान का लक्षण और उसका समय।**' समझ में आया ? सम्यग्दर्शन की व्याख्या कही। अब चौथी ढाल में सम्यग्ज्ञान की व्याख्या चलती है। सम्यग्दर्शन के साथ ही सम्यग्ज्ञान का विशेष आराधन करना कि जिससे ज्ञान की बहुत निर्मलता हो। इसलिए दर्शन के बाद यहाँ ज्ञान का अधिकार लिया है। मोक्षमार्ग में भी तीन लिये हैं न ? '**सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्राणि मोक्षमार्ग**' 'उमास्वामी'।

दो हजार वर्ष पहले 'कुन्दकुन्दाचार्य' महाराज दिगम्बर संत प्रभु थे, महान मुनि थे। वे भगवान के पास गये थे। 'कुन्दकुन्दाचार्य' दो हजार वर्ष पहले 'वंदेवास' है ना ? 'वंदेवास'

---

* **स्वापूर्वार्थव्यवसायात्मकं ज्ञानं प्रमाणम्।** (प्रमेयरत्नमाला, प्र.उ.सूत्र-१)

गाँव है। वहाँ से पाँच मील 'पोन्नुर हिल' है, 'मद्रास'। वहाँ दिगम्बर मुनि दो हजार वर्ष पहले रहते थे। वहाँ से भगवान के पास गये। 'सीमंधर' भगवान अभी बिराजते हैं, उस समय भी बिराजते थे। बहुत बड़ा आयुष्य है न ? वहाँ गये थे, आठ दिन रहे थे और वहाँ से आकर 'समयसार', 'प्रवचनसार', 'नियमसार' ताड़पत्र में लिखे हैं। महासंत ! 'पोन्नुर हिल', 'मद्रास' से ८० माईल दूर है। पर्वत है। हम दो बार गये हैं, पूरा संघ साथ में था। 'कुन्दकुन्दाचार्य'ने भगवान के पास (सुनकर) यहाँ शास्त्र बनाये। वे कहते हैं कि सम्यग्दर्शन होने के बाद सम्यग्ज्ञान का आराधन करना चाहिए।

(दोहा)

सम्यक् श्रद्धा धारि पुनि, सेवहु सम्यग्ज्ञान,
स्व-पर अर्थ बहु धर्मजुत, जो प्रगटावन भान।।१।।

प्रगटावन सूर्य है। सच्चे आत्मदर्शनपूर्वक ज्ञान का भानु सूर्य है। अंतर सूर्य चैतन्य भगवान। अनंत धर्मयुक्त, ऐसा लेंगे। देखो ! '**सम्यग्दर्शन धारण करके...**' पहले सम्यग्दर्शन बाद में ज्ञान, हाँ ! सम्यग्दर्शन न हो और मात्र ज्ञान को सम्यग्ज्ञान कहते नहीं।

'**(बहु धर्मजुत) अनेक धर्मात्मक...**' कहते हैं कि, ज्ञान में अनेक धर्मयुक्त आत्मा और अनेक स्वभावयुक्त जड़, उसका ज्ञानसूर्य में भान होता है। अनंत धर्मयुक्त आत्मा, अनंत गुण(स्वरूप) आत्मा। भगवानआत्मा जितने सिद्ध में अनंत गुण प्रकट हुए, वे सब अनंत गुण यहाँ आत्मा में हैं। ऐसे अनंत गुण का ज्ञान-बोध कराते हैं। विशेष लेना है न ? भाई ! दर्शन अभेद था न ? विस्तार करते हैं। ज्ञान स्वपरप्रकाशक (है), ऐसे लेना है न ? देखो !

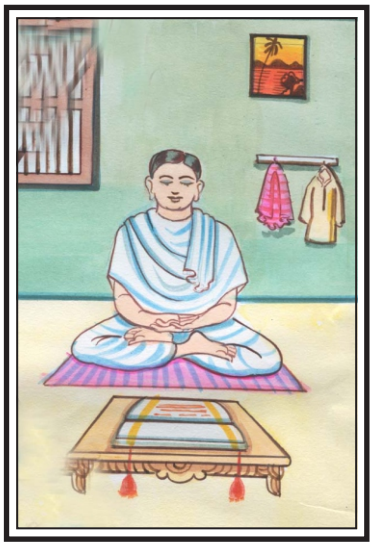

'**सम्यग्ज्ञान का सेवन करो;...**' क्यों ? '**(जो सम्यग्ज्ञान) अनेक धर्मात्मक (स्वपर अर्थ) अपना और**

दूसरे पदार्थों का ज्ञान कराने में सूर्य के समान है।' क्या कहते हैं ? सम्यग्दर्शन में तो अपने आत्मा की प्रतीत होती है, उसमें भेद नहीं होता। मैं आत्मा हूँ, उसमें आनंद है, उसमें ज्ञान है – ऐसा भेद सम्यग्दर्शन में नहीं होता। समझ में आया ? आहा..हा... ! सम्यग्दर्शन में अखंडानंद भगवान आत्मा अनंत गुणरूप एकस्वरूप, अनंत गुणरूप एकरूप (है) – ऐसी अंतर में निर्विकल्प प्रतीति होनी, उसमें भेद नहीं आता कि, यह ज्ञान है, यह आत्मा है और यह आनंद है, और यह आत्मा है – ऐसा भेद नहीं। ऐसी अंतर प्रतीति को सम्यग्दर्शन कहते हैं। आहा.. !

सम्यग्ज्ञान, आत्मा में अनंत गुण हैं – ऐसा सम्यग्ज्ञान में ज्ञात होता है। समझ में आया ? सर्वज्ञ परमेश्वर ने एक आत्मा में अनंत गुण देखे हैं। कहा था न ? बहुत बार कहते हैं। आकाश के प्रदेश हैं न आकाश के प्रदेश ? अमाप अमाप आकाश है न ? लोक के बाहर चारों ओर (आकाश है)। अमाप अनंत प्रदेश। अनंत प्रदेश से (अनंतगुने) गुण एक आत्मा में हैं। भगवान जाने, अपने को पता नहीं, अपने तो आत्मा को मानो। ऐसा कहते हैं कि, (ऐसा मानना उसे) मानना नहीं कहते। जिसे आत्मदृष्टि हुई, उसके ज्ञान में आत्मा अनंतगुणमय है – ऐसा नहीं। अनंत गुण है। आहा..हा... ! सर्वज्ञ परमेश्वर के अलावा, वीतराग तीर्थंकरदेव के अलावा.. बराबर हिन्दी नहीं आती, शब्द में थोडा फर्क पड जाता है। भगवान के अलावा यह बात दुनिया में, ओर कहीं नहीं है। परमेश्वर वीतराग तीर्थंकरदेव के कथन के अलावा यह बात तीनकाल, तीनलोक में अन्यत्र कहीं दूसरे में होती नहीं। समझ में आया ?

इसलिए 'दौलतरामजी' कहते हैं कि, सम्यग्ज्ञान... कैसे लिखा है, देखा न ! **'(बहु धर्मजुत)...'** समझ में आया ? **'अनेक धर्मात्मक अपना और दूसरे पदार्थों का ज्ञान कराने में सूर्य के समान है।'** समझ में आया ? जो ज्ञान-दर्शन-प्रतीति हुई उसमें यह अनंत गुणमय आत्मा है – (ऐसा भान हुआ)। एक एक ज्ञान में अनंत पर्याय होने की ताकत है। एक एक गुण में अनंती सामर्थ्यता है। एक एक ज्ञानगुण में अनंत पर्याय जो केवलज्ञान उ्पन्न होता है, केवलज्ञान, ऐसे केवलज्ञान की जो अनंती पर्याय हैं, वह ज्ञानगुण में पड़ी है। ऐसा-ऐसा अनंत गुणमय आत्मा है – ऐसा सम्यग्ज्ञान ज्ञान कराता है। समझ में आया ? अज्ञानी कहते हैं कि, एक आत्मा करो, आत्मा करो। लेकिन आत्मा क्या ? आत्मा है कौन ? और उसमें गुण कितने हैं ? जितने गुण हैं उतनी उसकी पर्याय होती हैं, अवस्था होती हैं। ऐसा भान हुए बिना उसका

सम्यग्ज्ञान होता नहीं। समझ में आया ? अच्छी बात कही है, देखो ! यहाँ लिखा है।

'**स्व-पर अर्थ बहु धर्मजुत, जो प्रगटावन भान।**' आहा..हा... ! यह वाचाज्ञान की बात नहीं है। अंतरज्ञान, जिसे सम्यग्ज्ञान कहते हैं, जो दर्शनपूर्वक हुआ तो वह ज्ञान आत्मा में अनंत गुण हैं – ऐसा बताता है और वह ज्ञान परमाणु आदि अनंत जड़ पदार्थ हैं,उसमें भी अनंत गुण हैं – ऐसा वह ज्ञान बताता है। एक एक जड़ परमाणु है, वह मिट्टी है न ? बहुत रजकण इकट्ठे हुए हैं। जड़ है, मिट्टी–धूल है। एक–एक परमाणु में... एक–एक कहते हैं, क्या कहते हैं ? प्रत्येक परमाणु में अनंत गुण हैं, अनंतानंत। जितने जीव में हैं, उतने उसमें हैं। इसमें ज्ञान और आनंद है, ऐसा उसमें नहीं है, लेकिन संख्या से इतने हैं। इतने गुण को सम्यग्ज्ञान बताता है – ऐसा कहते हैं। आहा..हा... ! समझ में आया ?

मुमुक्षु :– उसका नाम ज्ञान कहते हैं ?

उत्तर :– उसका नाम ज्ञान। आहा.. ! ज्ञान हो गया, लेकिन क्या ज्ञान हुआ ? अंदर कुछ जानने में आता था। लाल–पीला दिखता था। ध्यान... ध्यान... ध्यान... किसका ध्यान ? खरगोश के सिंग ? खरगोश होता है न ? उसे सींग नहीं होते। ऐसे आत्मा क्या चीज़ है ? एक समय में अनंतगुणमय अनंत धर्मस्वभाव और अनंती पर्यायमय – ऐसा ज्ञान नहीं हुआ तो उसे ज्ञान ही नहीं कहते। समझ में आया ? देखो !

अस्तित्व, वस्तुत्व, प्रमेयत्व, प्रभुत्व, स्वच्छता ऐसे अनंतगुण, संख्या से अनंत गुण। द्रव्य एक, गुण अनंत। द्रव्य एक–वस्तु एक, गुण अनंत। कितने अनंत ? कि, आकाश के प्रदेश से अनंतगुने। ऐसे–ऐसे अनंत गुण परमाणु में हैं। सम्यग्ज्ञान अपने अनंत गुण का और परमाणु के अनंत गुण का बोध कराता है। समझ में आया ? ओ..हो..हो... !'**अनेक धर्मात्मक (स्व-पर अर्थ) अपना और दूसरे पदार्थों का ज्ञान कराने में सूर्य समान है।**' चैतन्य का अंदर ज्ञान स्व का और पर का, सूर्य समान है। बाहर का सूर्य तो धूल है।

भावार्थ :– '**सम्यग्दर्शनसहित सम्यग्ज्ञान को दृढ करना चाहिए।**' सम्यग्दर्शनसहित, हाँ ! उसके बिना ज्ञान होता नहीं।'**सम्यग्ज्ञान को दृढ करना चाहिए। जिस प्रकार सूर्य समस्त पदार्थों को तथा स्वयं अपने को यथावत् दर्शाता है,...**' देखो ! सूर्य अपने को दिखाता है,

सूर्य पर को दिखाता है।'**उसी प्रकार जो अनेक धर्मयुक्त स्वयं अपने को...**' अनेक गुणयुक्त अपने को और अनेक गुणयुक्त परपदार्थों को '**ज्यों का त्यों बतलाता है, उसे सम्यग्ज्ञान कहते हैं।**' आहा..हा... ! अभेददृष्टिपूर्वक ज्ञान में सब भेद जानने में आते हैं। स्व-पर का भेद, राग को जानना, पुण्य को जानना, पुण्य है, राग है, पुण्य को जानना। ज्ञान जानता है कि, यह पुण्य है, पाप है। आत्मा में अनंत गुण हैं; पर में अनंत गुण हैं। ऐसा सम्यग्ज्ञान दर्शनपूर्वक होता है, उसको सम्यग्ज्ञान-मोक्ष के मार्ग का दूसरा भाग कहते हैं। पहला सम्यग्दर्शन, बाद में सम्यग्ज्ञान। उसकी विशेष बात कहेंगे... (श्रोता :- प्रमाण वचन गुरुदेव !)

❋

व्यवहारनय उपचरित अर्थको बतानेवाला होनेसे अभूतार्थ है । सम्यग्दर्शनके विषयभूत त्रिकाली ज्ञायकभावरुप अभेदमें भेद नहीं होने पर भी व्यवहारनय उसमें भेद बतलाता है, अतः उसे असत्यार्थ कहनेमें आता है । व्यवहारनय त्रिकाली ज्ञायक-भावको छोड़कर ज्ञायकभावमें नहीं है ऐसे भेदोंको - पर्याय आदिको प्रकट करता है, इसीलिए अभूतार्थ है। पर्यायको गौण कर, व्यवहार रूप बतलाकर, व्यवहारको झूठा बतलाया है । (परमागमसार-३४०)

❋

जैसे घने धुएँकी आड़में चूल्हे पर रखा हुआ लापसीका भगोना (तपेली) नहीं दिखता, वैसे ही पुण्य-पापके प्रेमरूपी धुएँकी आड़में ज्ञायकभाव दिखाई नहीं देता । पर्यायबुद्धि वालेको रागमें रस है - रूचि हे, जससे अन्तरमें विराजमान सकल-निरावरण वीतराग मूर्ति ढ़की रह जाती है।प्रबल कर्मके संयोगसे ज्ञायक-भाव तिरोभूत हो जाता है । तो भी ज्ञायक-भाव तो ज्ञायक भाव ही है , वह तिरोभूत नहीं होता । परन्तु प्रबल रागके संयोगसे अर्थात् रागकी रुचि और प्रेमके कारण ज्ञायक-भाव नहीं दिखाई देता, जिससे तिरोभूत हुआ है । (परमागमसार-३४१)